चरियापिताका

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> करियापिटक

अंतर्वस्तु

1करिया पिताका
1.1करियापिता-पूर्णता प्राप्त करना
1.1.1I. भाग 1-दान की पूर्णता
1.1.2भाग 2-नैतिकता की पूर्णता
1.1.3भाग 3- त्याग की पूर्णता
1.1.4दृढ़ संकल्प की पूर्णता
1.1.5सत्य की पूर्णता
1.1.6भाग 6- प्रेमपूर्ण दयालुता की पूर्णता
1.1.7भाग 7- समभाव की पूर्णता
1.2स्कैन किया गया संस्करण-कारिया पिताका-पूर्णता
1.3अंग्रेजी डाउनलोड करें/देखें
1.4मूल पाली संस्करण
1.4.1पाली-अंग्रेजी संस्करण
1.4.2पाली-देवनागरी संस्करण (संस्कृत/हिन्दी लिपि)

कारियापिताका

यह एक छोटी काव्य रचना है जिसमें बुद्ध के पूर्व जन्मों के पैंतीस वृत्तांत शामिल हैं (जातक कथाओं के समान) जब उन्होंने, एक बोधिसत्व (भविष्य के बुद्ध) के रूप में, असाधारण व्यवहार प्रदर्शित किए जिन्हें "पूर्णता" के रूप में जाना जाता है, जो बुद्धत्व के लिए आवश्यक शर्तें हैं।

नोट: 'C' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

कारियापिताक-पूर्णता प्राप्त करना

I. भाग 1-दान की पूर्णता

I.1 अकित्ति (अगस्त्य) का आचरण
I.2 शंख का आचरण
I.3 कुरु नैतिकता के अनुसार आचरण
I.4 महा-सुदस्सन का आचरण
I.5 महा-गोविन्द का आचरण
I.6 राजा निमि का आचरण
I.7 राजकुमार चंद का आचरण
I.8 राजा शिवी का आचरण
I.9 वेस्सन्तरा का आचरण
I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण

भाग 2-नैतिकता की पूर्णता

II.1 माता के समर्थक का आचरण (11)
II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)
II.3 नागा कैंपेय का आचरण(13)
II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
II.5 भैंस-राजा का आचरण(15)
II.6 रूरु हिरण-राजा का आचरण(16)
II.7 मतंग का आचरण(17)
II.8 देवपुत्र का धम्म आचरण(18)

II.9 अलिनसत्तू का आचरण(19)
II.10 शंखपाल का आचरण(20)

भाग 3- त्याग की पूर्णता
III.1 युधांजय का आचरण(21)
III.2 सोमनाश का आचरण(22)
III.3 अयोघरा का आचरण(23)
III.4 कमल के डंठलों का आचरण(24)
III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण(25)
दृढ़ संकल्प की पूर्णता
III.6 बुद्धिमान तेमत्या का आचरण (26)
सत्य की पूर्णता
III.7 वानर राजा का आचरण (27)
III.8 बुद्धिमान सक्का का आचरण (28)
III.9 युवा बटेर का आचरण (29)
III.10 मत्स्य राजा का आचरण (30)
III.11 कन्हादीपायन का आचरण (31)
III.12 सुतसोमा का आचरण (32)
भाग 6- प्रेमपूर्ण दयालुता की पूर्णता
III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
III.14 एकराजा का आचरण(34)
भाग 7- समभाव की पूर्णता
III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण (35)
एनवॉई-श्लोक

स्कैन किया हुआ संस्करण-कारियापिताका-पूर्णता
भाग 1-दान की पूर्णता
भाग 2-नैतिकता की पूर्णता
भाग 3-त्याग की पूर्णता भाग
4-दृढ़ संकल्प की पूर्णता भाग
5-सत्य की पूर्णता
भाग 6-प्रेमपूर्ण दया की पूर्णता
भाग 7-समभाव की पूर्णता

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> कैरियापिटक >> कैरियापिटक पाठ

अंतर्वस्तु

1करिया पिताका पाठ
1.1भाग 1: दान देने की पूर्णता
1.1.1I.1 अकित्ति (अगस्त्य) का आचरण (1)
1.1.2I.2 शंख का आचरण(2)
1.1.3I.3 कुरु अभिनय के अनुसार आचरण(3)
1.1.4I.4 महा-सुदासन का ऑपरेशन(4)
1.1.5I.5 महागोविंद का आचरण(5)
1.1.6I.6 राजा निमी का आचरण(6)
1.1.7I.7 प्रिंस चंदा का आचरण(7)

1.1.8I.8 राजा शिवी का आचरण(8)
1.1.9I.9 वेसंतारा का आचरण(9)
1.1.10I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण(10)
1.2भाग II: फ़िल्म की पूर्णता
1.2.1II.1 माता के समर्थकों का आचरण (11)
1.2.2II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)
1.2.3II.3 नागालैंड कैम्पेया का आचरण(13)
1.2.4II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
1.2.5II.5 बफ़ेलो राजा का आचरण (15)
1.2.6II.6 हिरण-राजा रुरु का आचरण (16)
1.2.7II.7 मातंगा का आचरण(17)
1.2.8II.8 देवपुत्र धम्म का आचरण (18)
1.2.9II.9 एलिनासत्तू का आचरण(19)
1.2.10II.10 शंखपाल का आचरण(20)
1.3भाग III: त्याग की पूर्णता
1.3.1III.1 युधाञ्जय का आचरण(21)
1.3.2III.2 सोमनासा का आचरण(22)
1.3.3III.3 योगाहार का ऑपरेशन(23)
1.3.4III.4 आचरण (उद्देश्य] कमल के खिलौने शामिल हैं (24)
1.3.5III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण (25)
1.4दृढ़ संकल्प की पूर्णता
1.4.1III.6 बुद्धि का आचरण (26)
1.5सत्य की पूर्णता
1.5.1III.7 बंदर राजा का आचरण(27)
1.5.2III.8 बुद्धिमता का आचरण (28)
1.5.3III.9 युवा बेटे का आचरण(29)
1.5.4III.10 मछली-राजा का आचरण (30)
1.5.5III.11 कन्हादीपायन का आचरण(31)
1.5.6III.12 सुतासोमा का आचरण(32)
1.6प्रेम और करुणा की पूर्णता
1.6.1III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
1.6.2III.14 एकराज का आचरण(34)
1.7समभाव की पूर्णता
1.7.1III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण(35)
1.8ENVOI-VERSES

कारियापिताका पाठ
(आचरण-सुधारने वाली पूर्णताओं की टोकरी)
नोट: 'C' का उच्चारण 'च' की तरह होता है, जैसे 'चाइना' में।

नमो तस्स भगवतो, अराहतो,
सम्मा सैम बुद्धस्स

उस भगवान, अरिहंत,
पूर्णतः आत्म जागृत, बुद्ध को श्रद्धांजलि

भाग 1: दान देने की पूर्णता
(दानपारमिता)

I.1 अकित्ती (अगस्त्य) का आचरण (1)
(अकित्तिकारियम) अकित्त-जातक क्रमांक 480 देखें

1 अब से लेकर एक लाख युग
और चार असंख्य युग पहले के बीच के अंतराल में, सभी आचरण
ज्ञानोदय के लिए परिपक्व हो रहे थे।

2 बीते युगों के अनेक जन्मों के आचरण को त्यागकर, मैं
इस युग के आचरण के विषय में बात करूँगा। मेरी बात सुनो।

3 जब मैं एक विशाल वन में, एक खाली
खुले वन-घाटी में, अकित्ति (अगस्त्य) नामक तपस्वी के रूप में निवास कर रहा था।

4 तब त्रिवंश के अधिपति (तवतिंसा के सक्क राजा) स्वर्ग (उनका अलंकृत
आसन), मेरी तपस्या की प्रज्वलन से प्रज्वलित होकर,
ब्राह्मण के वेश में भिक्षा मांगने मेरे पास आए।

5 उन्हें अपने (पत्तेदार झोपड़ी के) द्वार पर भोजन पात्र के साथ खड़ा देखकर,
मैंने उनके सामने वन से एकत्रित पत्ते बिखेर दिए
, बिना तेल और बिना नमक के।

6 उसे पत्ते देकर, मैंने (भोजन का) पात्र
उल्टा करके, उस दिन भिक्षा की और खोज छोड़ दी और
पत्तों की छोटी सी झोपड़ी में प्रवेश किया।

7 और वह दूसरी और तीसरी बार मेरे पास आया। अविचलित,
बिना किसी आसक्ति के, मैंने पहले की तरह ही दिया।

8 इस (दान) के कारण मेरे शरीर में कोई परिवर्तन नहीं आया । मैंने वह दिन
उत्साह और प्रसन्नता से बिताया । 9 यदि मुझे केवल एक या दो महीने के लिए भी कोई योग्य प्राप्तकर्ता मिल जाए, तो मैं अविचलित, अडिग रहकर वह सर्वोच्च दान दे दूंगा। 10. दान देते समय मैंने यश या लाभ की आकांक्षा नहीं की । सर्वज्ञता की आकांक्षा से मैंने वे पुण्य कर्म किए।

I.2 शंख का आचरण(2)
(संखचर्यम) संख-जातक # 442 देखें

1 और फिर, जब मैं संख नामक ब्राह्मण था और

विशाल सागर पार करना चाहता था, तब मैं बंदरगाह की ओर जा रहा था।
(सुवर्णभूमि [थाईलैंड?] के लिए नाव लेने हेतु तमलित्ती)।

2 वहाँ मैंने मार्ग के दूसरी ओर एक स्वयंभू
बुद्ध (पच्चेकबुद्ध) को देखा, जो एक अजेय थे और
एक रेगिस्तानी मार्ग पर चल रहे थे, जिसकी भूमि गर्म और ऊबड़-खाबड़ थी।

3 जब मैंने उसे सड़क के दूसरी ओर देखा, तो मैंने
इस बात की जाँच की: "यह पुण्य का खेत है, जहाँ
पुण्य चाहने वाला व्यक्ति पहुँचा है।

4 जैसे एक किसान, भरपूर उपज देने वाले खेत को देखकर भी
उसमें बीज नहीं बोता, तो उसे अनाज की आवश्यकता नहीं होती,

5 वैसे ही मैं, पुण्य की इच्छा रखते हुए, उस उत्तम और शानदार खेत को देखकर
, यदि मैं वहाँ सेवा नहीं करता, तो मुझे
पुण्य की आवश्यकता नहीं होती।

6 जैसे एक मंत्री, राजा के महल में बैठे लोगों पर अधिकार की इच्छा रखते हुए
, उन्हें धन और अनाज नहीं देता, तो उसकी
शक्ति कम हो जाती है,

7 वैसे ही मैं, पुण्य की इच्छा रखते हुए, विश्वास के वरदान के योग्य व्यक्ति को देखकर
, यदि मैं उसे वरदान नहीं देता, तो मेरा
पुण्य कम हो जाएगा।"

8 ऐसा सोचकर, मैंने अपने जूते उतारकर, उसके चरणों का आदर करते हुए,
उसे धूप से बचने के लिए छाँव और जूते दिए।

9 मैं, जो उससे सौ गुना अधिक कोमल और आराम
से पोषित था, फिर भी देने की पूर्णता को पूरा करते हुए
, मैंने उसे (ये चीजें दीं जिनकी मुझे उससे अधिक आवश्यकता थी
)।

I.3 कुरु नैतिकता के अनुसार आचरण(3)
(कुरुधम्मचरियम) कुरुधम्म-जातक #276 देखें
1 फिर, जब मैं
इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) के शानदार शहर में धनंजय नामक राजा था,
तब मुझे दस कुशल (कार्य विधियाँ) प्राप्त थीं।

2 कलिंग (उड़ीसा) राज्य के ब्राह्मण
मेरे पास आए; उन्होंने मुझसे उस हाथी का अनुरोध किया जिसे
शुभ और शुभ माना जाता था।

3 "देश में सूखा पड़ा है, भोजन की कमी है, भयंकर
अकाल है। हमें अंजना नामक तेजस्वी काले हाथी को दे दीजिए।"

4 जब कोई याचक आया हो तो मेरा इनकार करना उचित नहीं था
। (मैंने सोचा), “मैं अपना वचन न तोड़ूँ। मैं
शक्तिशाली हाथी दे दूँगा।” 5 हाथी को सूंड से पकड़कर, एक रत्नजड़ित औपचारिक पात्र से हाथ पर

(समर्पण का) जल छिड़ककर मैंने हाथी को ब्राह्मणों को सौंप दिया। 6 जब उन्होंने यह हाथी भेंट किया, तो मंत्रियों ने यों कहा, “आपने इस तेजस्वी हाथी को याचिकाकर्ताओं को क्यों भेंट किया? 7 हे शुभ, शुभ संकेत देने वाले, युद्ध में विजय प्राप्त करने में श्रेष्ठ, अब जब हाथी भेंट कर दिया गया है, तो आपका राज्य क्या करेगा?” 8 मैं अपना सारा राज्य भी दे देता, मैं अपना शरीर भी दे देता। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसीलिए मैंने हाथी भेंट किया।

I.4 महा-सुदासन का संचालन(4)
(महासुदस्सनचार्यम) महासुदस्सन-जातक क्रमांक 95 देखें

1 जब मैं कुशवती नगर में
महासुदस्सन नामक पृथ्वी स्वामी, अत्यंत शक्तिशाली चक्रचालक के रूप में था,

तब मैंने वहाँ प्रतिदिन तीन बार इस स्थान और
उस स्थान पर यह घोषणा करवाई: किसे क्या चाहिए? किसे क्या धन
दिया जाएगा?

3 कौन भूखा है? कौन प्यासा है? किसे माला चाहिए, किसे
मरहम? कौन नंगा होकर अनेक रंगों के वस्त्र पहनेगा?

4 कौन राजमार्ग पर छाता लेकर चलेगा, कौन कोमल
और सुखदायक चप्पलें पहनेगा? इस प्रकार मैंने संध्या और सूर्योदय के समय
इस स्थान और उस स्थान पर यह घोषणा करवाई।

5 केवल दस स्थानों पर या सौ स्थानों पर नहीं, बल्कि असंख्य
सैकड़ों स्थानों पर प्रार्थना करने वालों के लिए धन तैयार किया जाता था।

6 यदि कोई भिक्षु या भिखारी दिन हो या
रात, आता, तो वह अपनी इच्छा की वस्तुएँ पाकर
हाथ भरकर चला जाता।

7 मैंने अपने जीवन भर ऐसा ही महान दान दिया। मैंने
धन इसलिए नहीं दिया क्योंकि वह अप्रिय था या मेरे
पास कोई धन-संग्रह नहीं था।

8 जैसे कोई बीमार व्यक्ति
डॉक्टर को कुछ धन देकर रोगमुक्त हो जाता है,

9 वैसे ही मैंने भी, यह जानकर, पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करने
और मन को संतोष से मुक्त करने के लिए, आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु,
निसंतुष्टि से भिखारियों को दान दिया,
प्रतिफल की अपेक्षा किए बिना।

I.5 महागोविंदा का आचरण(5)
(महागोविन्दचार्यर्म) महागोविन्द सूत्र

1 देखें। फिर, जब मैं ब्राह्मण महागोविन्द था,
सात राजाओं का पुरोहित, तब मुझे मनुष्यों में देवताओं द्वारा सम्मानित किया गया।
2 तब मैंने सात राज्यों में जो भी भेंटें थीं, उनसे
सागर के समान शांत भाव से महान दान दिया।

3 धन और अन्न मुझे अप्रिय नहीं थे, और न ही मैंने
कोई भंडार रखा था। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने
वैभवशाली धन दान किया।

I.6 राजा निमी का आचरण(6)
(निमिराजचर्यम) निमि-जातक #541 देखें

1 और फिर, जब मैं मिथिला के शानदार नगर में
निमि नामक एक महान राजा था, जो विद्वान और कल्याणकारी था।

2 तब मैंने चार प्रवेश द्वारों वाले चार महल बनवाए। वहाँ
मैंने पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों आदि को उपहार दिए।

3 वस्त्र, पलंग, भोजन, पेय और (अन्य अनेक प्रकार की)
खाद्य सामग्री—मैंने महान उपहार दिए, और उन्हें निरंतर प्रदान किया।

4 जैसे एक सेवक धन की प्राप्ति के लिए स्वामी के पास जाकर
हावभाव, वाणी और विचार से तृप्ति चाहता है,

5 वैसे ही मैं प्रत्येक जन्म में जागृति के लिए उत्पन्न होने वाली वस्तु की खोज करूँगा
, प्राणियों को उपहारों से परिपूर्ण करूँगा; मैं
परम जागृति की कामना करता हूँ।

I.7 राजकुमार चंदा का आचरण(7)
(चंदकुमाराचार्यम) खंडाहल जातक #542

1 फिर, जब मैं पुप्पवती नगर में
चंदा नामक राजकुमार एकराज का पुत्र था, 2 तब मैंने यज्ञ से मुक्त होकर, यज्ञकुंड

से निकलकर , एक गहन रोमांच उत्पन्न करते हुए, एक महान दान दिया। 3 मैंने पाँच-छह रातों तक बिना किसी योग्य दान दिए न पिया, न खाया और न ही कोई मदिरा ग्रहण किया । 4 जैसे कोई व्यापारी माल का भंडार वहाँ रखता है जहाँ अधिक लाभ होता है, 5 वैसे ही, स्वयं द्वारा उपयोग की गई वस्तु से भी जो दूसरों को दिया जाता है, वह महान फलदायी होता है; अतः जो दूसरों को दिया जाता है, वह सौ गुना हो जाता है। 6 इस सत्य को जानकर मैंने जन्म-जन्मांतर तक दान दिया। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मैंने दान देने से कभी विमुख नहीं हुआ।

I.8 राजा शिवी का आचरण(8)

(शिराजचर्यम) सिवि-जातक क्रमांक 499

1 अरित्थ नामक नगर में, मैं सिवि नामक एक योद्धा-राजकुमार था।
एक भव्य महल में बैठा हुआ मैं इस प्रकार सोच रहा था:

2 "मनुष्यों
द्वारा दी जाने वाली कोई भी देन ऐसी नहीं है जो मैंने न दी हो। यदि कोई मुझसे आँख भी माँगे तो
मैं उसे बिना विचलित हुए दे दूँगा।"

3 मेरी इच्छा जानकर, देवताओं के स्वामी सक्का, जो देवताओं के समूह में बैठे थे
, ने ये शब्द कहे:

4 "एक भव्य महल में बैठे हुए, महान मानसिक शक्ति वाले राजा सिवि

, अनेक वरदानों के विचार में, ऐसी किसी चीज को नहीं देख रहे जो
दी न जा सके।

5 आओ, मैं इसकी परीक्षा लूँ कि यह सत्य है या असत्य।
एक क्षण रुको, जब तक मैं उसके मन को न जान लूँ।"

6 काँपते हुए, भूरे बालों वाले, झुर्रीदार अंगों वाले, बूढ़े, बीमार और अंधे व्यक्ति के रूप में प्रकट होकर
, वह राजा के पास आया।

7 फिर उसने अपने बाएँ और दाएँ हाथ फैलाकर, अपने
जुड़े हुए हाथों को अपने सिर पर लाकर ये शब्द कहे:

"हे महान राजा, जिन्होंने राज्य का
धर्मपूर्वक पालन-पोषण किया है, जिनकी दानशीलता की प्रसिद्धि
देवताओं और मनुष्यों में फैली हुई है;

9 मेरी दोनों आँखें, मेरे मार्गदर्शक, अंधी हो गई हैं, नष्ट हो गई हैं।
मुझे एक आँख दे दीजिए, आप भी एक आँख से ही आगे बढ़ते रहिए।"

10 जब मैंने उनके ये शब्द सुने, तो मैं प्रसन्न हुआ, मन में अत्यंत रोमांचित हुआ, अपने हाथ जोड़कर, उत्साह से भर गया, और ये शब्द
कहे : 11 "अब मैं (इसी बात को ध्यान में रखते हुए) महल से यहाँ आया हूँ; आप, मेरे मन को जानते हुए, एक आँख माँगने आए हैं। 12
आह, मेरा उद्देश्य पूरा हो गया है, मेरी इच्छा पूरी हो गई है। आज मैं एक ऐसा गौरवशाली दान दूँगा जो पहले किसी याचक को नहीं दिया
गया।" 13 "आओ, शिवक, उठो और काम करो, देर मत करो, काँपो मत। अपनी दोनों आँखें भी मैं इस भिखारी को दे देता हूँ ।" 14 तब
शिवक ने, मेरे उकसाने पर, मेरी आज्ञा का पालन करते हुए, उन्हें ताड़ के पेड़ के गूदे की तरह निकाल कर याचक को दे दिया। 15 जब
मैं देने की इच्छा कर रहा था, जब मैं दे रहा था, और जब मैंने दे दिया, तब मेरे मन में कोई दुविधा नहीं थी; यह सब ज्ञानोदय के लिए ही
था। 16 मुझे वे दोनों आँखें अप्रिय नहीं लगीं और न ही मैं स्वयं अप्रिय लगा। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने वे आँखें दे दीं।

I.9 वेसंतारा का आचरण(9)
(वेसन्तरचरियार्) वेसन्तर-जातक क्रमांक 547 देखें

1 जो मेरी माता थीं, वीरांगना
पुषती और पिछले जन्म में सक्का की प्रमुख संगिनी —

2 उनका जीवनकाल समाप्त होते देख, देवताओं के स्वामी ने
कहा, "हे प्रिय, मैं तुम्हें दस वरदान दे रहा हूँ,
जो वरदान तुम चाहो चुन लो।"

3 और यह सुनकर देवी ने फिर सक्का से कहा , "मुझमें क्या दोष है? मैं तुम्हें
किस प्रकार अप्रिय हूँ कि तुम मुझे एक रमणीय स्थान से उसी प्रकार विदा कर रहे हो जैसे हवा किसी धरणीरुह (वृक्ष) को गिरा देती है?"
4 और यह सुनकर सक्का ने फिर उनसे कहा, "ऐसा बिल्कुल नहीं है कि आपने कोई बुराई की है और न ही आप मुझे प्रिय नहीं हैं। 5
आपका जीवनकाल बस इतना ही है; अब तो मृत्यु का समय आ गया है। मेरे द्वारा दिए गए दस अतुलनीय वरदान स्वीकार करो।" 6
सक्का द्वारा वरदान प्राप्त करने वाली फुसती ने प्रसन्नतापूर्वक, आनंदित होकर , मुझे सहित दस वरदान स्वीकार किए। 7 फुसती वहाँ से
मृत्यु को प्राप्त करके जेतुत्तरा नगर में योद्धा-कुलीनों के बीच उठीं और संजय से विवाह किया। 8 जब मैं फुसती के गर्भ में अवतरित
हुआ, तो मेरी प्रिय माता, मेरी माता, मेरे तेज से सदा दान करने में प्रसन्न रहती थीं। 9 उन्होंने दरिद्रों, बीमारों, बूढ़ों, याचकों, यात्रियों,
संन्यासियों और ब्राह्मणों, संपत्ति खो चुके लोगों और निर्धनों को दान दिया। 10 फुसती ने मुझे दस माह तक गर्भ में धारण करके, नगर
का चक्कर लगाते हुए, वेस्सा की गली में जन्म दिया। 11 मेरा नाम न तो मेरी माता के पक्ष से था और न ही मेरे पिता के पक्ष से। क्योंकि
मेरा जन्म व्यापारियों की गली में हुआ था, इसलिए मुझे वेस्सानातारा कहा गया। 12 जब मैं आठ वर्ष का बालक था, महल में बैठा हुआ

था, तब मैंने दान देने का विचार किया। 13 मैंने यह घोषणा कर दी थी कि मैं अपना हृदय, आँखें, मांस और यहाँ तक कि अपना रक्त भी दे दूँगा, यदि कोई मुझसे विनती करे तो मैं अपना शरीर भी दे दूँगा। 14 जब मैं अपनी स्थिर, दृढ़ मन की स्थिति पर विचार कर रहा था, तब सिनेरु के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी काँप उठी। 15 प्रत्येक पखवाड़े (और हमेशा) पूर्णिमा के दिन, व्रत के दिन, मैं हाथी पचया पर सवार होकर दान देने जाता था। 16 कलिंग राज्य के ब्राह्मण मेरे पास आए; उन्होंने मुझसे नाग हाथी माँगा, जिसे शुभ और शुभ माना जाता था। 17 देश में सूखा पड़ा है, भोजन की कमी है, और एक बड़ी आपदा आई है।

अकाल। हमें वह तेजस्वी श्वेत हाथी दीजिए, जो
हाथियों में श्रेष्ठ है।"

18 मैं अविचलित रहा, मैंने ब्राह्मणों
की हर विनती पूरी कर दी। मेरे पास जो कुछ था, मैंने उसे छिपाया नहीं;
मेरा मन देने में प्रसन्न था।

19 जब कोई याचक आया था, तब मेरा इनकार करना उचित नहीं था।
मैंने सोचा, "मैं अपना वचन न तोड़ूँ। मैं वह
शक्तिशाली हाथी दे दूँगा।"

20 हाथी को सूंड से पकड़कर,
एक रत्नजड़ित पात्र से अपने हाथ पर जल छिड़ककर, मैंने
हाथी ब्राह्मणों को दे दिया।

21 और फिर, जब मैं उस उत्तम श्वेत हाथी को दे रहा था , तब भी
सिनरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी काँप उठी । 22 हाथी के दान से क्रोधित होकर शिवी लोग एकत्रित हुए ; उन्होंने मुझे मेरे ही राज्य से निर्वासित कर दिया और कहा, "इसे वांका पर्वत पर जाने दो।" 23 जब वे मुझे शहर से निकाल रहे थे, तब भी मैं अविचलित और दृढ़ रहा और मैंने एक वरदान माँगा: एक बड़ा दान देना। 24 मेरे अनुरोध पर सिवी नगर के सभी लोगों ने मुझे वह वरदान दिया। मैंने दो ढोल बजवाकर बड़ा दान दिया। 25 तब उस ध्वनि से वहाँ बहुत शोरगुल और भय का माहौल छा गया। उस (पहले) दान के कारण उन्होंने मुझे शहर से निकाल दिया था—मैंने फिर से दान दिया। 26 हाथी, घोड़े, रथ, दास स्त्रियाँ और पुरुष, मवेशी और धन-संपत्ति देकर—बड़ा दान देने के बाद मैं नगर से चला गया। 27 जब मैं नगर से चला गया और पीछे मुड़कर देखा, तो सिनेरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सजी पृथ्वी भी काँप उठी। 28 चार घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ को देकर, एक बड़े चौराहे पर अकेले, बिना किसी साथी के खड़े होकर, मैंने महिला मद्दी से कहा: 29 "मद्दी, तुम कान्हा को ले लो, वह कोमल और छोटी है। मैं जाली को उठा लूँगा क्योंकि भाई होने के नाते वह भारी भार है। 30 मद्दी ने कन्हाजिना को ऐसे उठाया जैसे वह नीला कमल हो या सफेद कमल-मुलायम। मैंने वीर योद्धा जाली को ऐसे उठाया जैसे वह सोने का लौकी हो। 31 चार वीर योद्धा, उच्च कुल के, सुसंस्कृत, ऊबड़-खाबड़ और समतल भूमि पर चलते हुए, वांका पर्वत की ओर जा रहे थे। 32 जो भी लोग उसी दिशा से या विपरीत दिशा से आ रहे थे, हमने उनसे रास्ता पूछते हुए कहा, " वांका पर्वत कहाँ है?" 33 हमें वहाँ देखकर उन्होंने करुणा भरे शब्द कहे, उन्होंने अपना दुख व्यक्त किया कि वांका पर्वत बहुत दूर है। 34 यदि बच्चों ने जंगल में फलदार वृक्ष देखे, तो वे उन फलों के लिए रोने लगे।

35 जब विशाल वृक्षों ने देखा कि बच्चे रो रहे हैं, तो
वे स्वतः झुक गए और
बच्चों के पास आ गए।

36 इस अद्भुत, आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर,
हर अंग से सुंदर मद्दी ने प्रशंसा की।

37 "यह सचमुच संसार में एक चमत्कार है, अद्भुत, आश्चर्यजनक। वेसंतारा के प्रकाश
से वृक्ष स्वतः झुक गए हैं ।" 38 बच्चों पर दया करके यक्षों ने मार्ग छोटा कर दिया ; जिस दिन वे निकले, उसी दिन वे चेत राज्य पहुँच गए। 39 उस समय मतुला में साठ हजार राजा रहते थे। सभी हाथ जोड़कर रोते हुए आगे आए। 40 वहाँ चेत (राजाओं) और उनके पुत्रों से बातचीत करने के बाद , वे वहाँ से वांका पर्वत पर आ पहुँचे। 41 देवों के स्वामी ने महान मानसिक शक्ति वाली विस्साकम्मा को संबोधित करते हुए कहा, "एक सुगठित कुटिया, एक सुंदर पत्तों की कुटिया बनाओ।" 42 जब विस्साकम्मा, जो अत्यंत शक्तिशाली

मानसिक शक्ति से संपन्न थीं, ने सक्का के वचन सुने, तो उन्होंने एक सुंदर, रमणीय पत्तियाँ-पत्थर की कुटिया बनवाई। 43 शांत और निर्मल वन में जाकर हम चारों उस पर्वत पर रहने लगे। 44 मैं, मद्दी और जली एवं कन्हाजिना उस कुटिया में एक-दूसरे के दु:खों को दूर करते हुए रहते थे। 45 बच्चों की देखभाल करते हुए मैं संन्यास के दौरान निष्क्रिय नहीं रहती थी । मद्दी फल लाती थी और तीनों का पेट भरती थी। 46 जब मैं वन में रह रही थी, एक यात्री मेरे पास आया। उसने मुझसे जली एवं कन्हाजिना दोनों बच्चों को माँग लिया। 47 उस याचक को आते देख मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने दोनों बच्चों को गोद में लेकर ब्राह्मण को सौंप दिया। 48 जब मैं अपने बच्चों को ब्राह्मण को सौंप रहा था , तब भी सिनरू के उपवनों से सुशोभित पृथ्वी कांप उठी। 49 फिर, ब्राह्मण के वेश में अवतरित होकर सक्का ने मुझसे गुणी, पवित्र पत्नी मद्दी को मांगा। 50 मद्दी का हाथ थामकर, दोनों हाथों में जल भरकर, अपने उद्देश्य में दृढ़ विश्वास रखते हुए, मैंने उसे मद्दी सौंप दी। 51 जब मद्दी सौंपी जा रही थी, तब स्वर्ग में देवता प्रसन्न हुए; सिनरू के उपवनों से सुशोभित पृथ्वी कांप उठी। 52 जली (मेरा पुत्र), कन्हाजिना (मेरी पुत्री), और पवित्र पत्नी मद्दी—इन्हें छोड़ने में मुझे कोई संकोच नहीं हुआ; यह तो आत्मज्ञान के लिए ही था।
53 मुझे दोनों में से कोई भी संतान अप्रिय नहीं थी, मद्दी तो मुझे अत्यंत प्रिय थी।
मुझे यह अप्रिय नहीं लगा। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने
अपने प्रिय लोगों को दान कर दिया।

54 फिर विशाल वन में अपने माता-पिता के साथ,
जब वे करुणापूर्वक विलाप कर रहे थे और
मेरे सुख-दुख के बारे में बातें कर रहे थे,

55 मैं लज्जा और निंदा के भय से,
आदरपूर्वक उनके पास गया; सिनरू के (स्वर्गीय)
उपवनों से सुशोभित पृथ्वी तब भी कांप उठी।

56 फिर अपने रिश्तेदारों के साथ विशाल वन से निकलकर , मैं नगरों में
श्रेष्ठ रमणीय नगर जेतुत्तरा में प्रवेश किया । 57 सात प्रकार के रत्नों की वर्षा हुई, एक विशाल वर्षा हुई; सिनरू के (स्वर्गीय) उपवनों से सुशोभित पृथ्वी तब भी कांप उठी। 58 सुख-दुख से अनभिज्ञ यह पृथ्वी भी, मेरे दान की शक्ति से सात बार कांप उठी। (उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तुषिता स्वर्ग में हुआ)

I.10 बुद्धिमान खरगोश का आचरण(10)
(ससपंडितचर्यम्) देखें सस-जातक क्रमांक 316

1 फिर, जब मैं एक खरगोश था जो जंगल में
घास, पत्ते, जड़ी-बूटियाँ और फल खाकर घूमता था, और
दूसरों पर अत्याचार नहीं करता था,

2 तब एक बंदर, एक सियार, एक छोटा ऊदबिलाव और मैं
उसी पड़ोस में रहते थे और शाम-सुबह दिखाई देते थे।

5 मैंने उन्हें अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में बताया: "
बुरे कर्मों से दूर रहो, अच्छे कर्मों का पालन करो।"

4 एक व्रत के दिन पूर्णिमा का चाँद देखकर, मैंने
उन्हें वहाँ बताते हुए कहा, "आज व्रत का दिन है।

5 उपहार के योग्य व्यक्ति को देने के लिए उपहार तैयार करो;
उपहार के योग्य व्यक्ति को उपहार देकर व्रत का पालन करो।"

6 मुझे "बहुत अच्छा" कहते हुए,

उन्होंने अपनी सामर्थ्य और साधनों के अनुसार उपहार तैयार किए और
उपहार के योग्य व्यक्ति की खोज की।

7 वहाँ बैठे-बैठे मैंने एक योग्य, उपयुक्त उपहार के बारे में सोचा: "यदि
मुझे कोई उपहार के योग्य व्यक्ति मिले, तो मैं उसे क्या उपहार दूँ?

8 मेरे पास तिल, चना, दाल, चावल, घी नहीं है।
मैं घास खाकर ही अपना जीवन यापन करता हूँ; घास देना संभव नहीं है।

9 यदि कोई उपहार के योग्य व्यक्ति भोजन के लिए मेरे पास आए, तो
मैं स्वयं को ही दे दूँगा; वह खाली हाथ नहीं लौटेगा।"

10 मेरा इरादा जानकर, सक्का ब्राह्मण के वेश में
मेरी गुफा में आया ताकि वह मेरे दान की परीक्षा ले सके।

11 जब मैंने उसे देखा, तो प्रसन्न होकर मैंने ये शब्द कहे, "अच्छा हुआ
कि तुम भोजन के लिए मेरे पास आए हो।

12 आज मैं तुम्हें एक ऐसा उत्तम उपहार दूँगा जो पहले कभी नहीं दिया गया। तुम
नैतिक गुणों से परिपूर्ण हो; तुममें
दूसरों पर अत्याचार करना उचित नहीं है।

13 आओ, आग जलाओ, और तरह-तरह की लकड़ियाँ इकट्ठा करो। मैं स्वयं को भूनूँगा
, और तुम मुझे भूनकर खाओगे।"

14 उसने "ठीक है" कहते हुए, प्रसन्न होकर, तरह
-तरह की लकड़ियाँ इकट्ठा कीं; अंगारों का एक कोना बनाकर उसने एक विशाल
चिता बनाई।

15 उसने वहाँ ऐसी आग जलाई जो जल्दी ही बड़ी हो गई।
धूल से सने अपने अंगों को झटकते हुए मैं एक तरफ बैठ गया।

16 जब लकड़ियों का विशाल ढेर जल रहा था और गर्जना कर रहा था, तब मैं उछलकर धधकती लपटों
के बीच गिर पड़ा । 17 जैसे कोई ठंडे पानी में प्रवेश करता है तो उसकी पीड़ा और बुखार शांत हो जाता है और उसे संतुष्टि और आनंद
मिलता है। 18 वैसे ही जब मैं जलती हुई आग में प्रवेश किया तो मेरी सारी पीड़ा शांत हो गई, मानो वह ठंडा पानी हो। 19 मैंने ब्राह्मण को
अपना पूरा शरीर, बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें, हड्डियाँ और हृदय की मांसपेशियाँ , सब कुछ अर्पित कर दिया।

भाग II: नैतिकता की पूर्णता
(सिलापरामिता) मति-पोसाका-जातक 455 देखें

II.1 माता के समर्थक का आचरण (11)
(मतिपोषकचर्यम्)

1 जब मैं वन में अपनी
माता का सहारा बनकर एक भव्य हाथी था, तब पृथ्वी पर मेरे समान
नैतिक गुण किसी और में नहीं थे।

2 एक वनपाल ने मुझे वन में देखकर राजा को
मेरे बारे में बताया, "महाराज, आपके योग्य एक हाथी
वन के एक उपवन में रहता है।

3 उसके लिए किसी प्रकार की सावधानी की आवश्यकता नहीं है, न ही उसे
पकड़ने के लिए गड्ढे या खंभे की। यदि उसे सूंड से पकड़ा जाए तो वह
स्वयं यहाँ आ जाएगा।"

4 यह सुनकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने
एक कुशल, प्रशिक्षित हाथी प्रशिक्षक को भेजा।

5 वह हाथी प्रशिक्षक वहाँ जाकर मुझे एक कमल-कुंड में
अपनी माता के भोजन के लिए कमल की जड़ें निकालते हुए देखा।

6 मेरे नैतिक गुणों को पहचानकर उन्होंने मुझे विशिष्ट
लक्षणों से अवगत कराया। 'आओ पुत्र' कहकर उन्होंने मुझे मेरी सूंड से पकड़ लिया।

7 उस समय मेरे शरीर की जो स्वाभाविक शक्ति थी,
वह आज एक हजार हाथियों की शक्ति के समान है।

8 यदि मैं उन लोगों पर क्रोधित होता जो मुझे पकड़ने आए थे, तो मैं मनुष्य जाति
के पूरे राज्य को भी कुचल कर मार डालता ।9 फिर भी, नैतिकता की रक्षा के लिए, नैतिकता की पूर्णता को पूरा करने के लिए, मैं अपना मन नहीं बदलता, भले ही वे मुझे खंभे से बांध रहे होते। 10 यदि वे वहाँ कुल्हाड़ी और भाले से मुझ पर हमला करते, तो भी मैं अपनी नैतिकता के टूटने के डर से उन पर क्रोधित नहीं होता।

II.2 भूरिदत्त का आचरण(12)

(भूरिदत्तचर्यम) भूरिदत्त-जातक क्रमांक 543 देखें

1 और फिर, जब मैं भूरिदत्त था, महान मानसिक शक्ति वाला,
मैं महान राजा विरुपाक्खा के साथ एक देवलोक में गया।

2 वहाँ मैंने पूर्णतः सुख में लीन देवताओं को देखकर, उस स्वर्ग
में जाने के लिए नैतिकता का व्रत लिया ।3 अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करके, पर्याप्त भोजन करके , चार सिद्धांतों पर दृढ़ निश्चय करके, मैं एक चींटी के टीले पर लेट गया। 4 जिसे भी मेरी भीतरी त्वचा, बाहरी त्वचा, मांस, नसें या हड्डियों की आवश्यकता हो, वह उसे ले जाए, जैसा है वैसा ही। 12 5 जब मैं लेटा हुआ था, कृतघ्न अलम्पन ने मुझे पकड़ लिया। मुझे एक टोकरी में डालकर उसने मुझे यहाँ- वहाँ कर्म करने के लिए मजबूर किया। 6 टोकरी में डाले जाने पर भी, उसके हाथों से कुचले जाने पर भी , मैंने अपनी नैतिकता भंग होने के भय से अलम्पन पर क्रोधित नहीं हुआ ।7 मेरे लिए अपने प्राणों का बलिदान घास के बलिदान से भी तुच्छ था ।नैतिकता का उल्लंघन मेरे लिए उलटी हुई पृथ्वी के समान था। 8 मैं सौ जन्मों तक अपने प्राणों का बलिदान कर सकता था, लेकिन चारों महाद्वीपों पर शासन करने के लिए भी नैतिकता का उल्लंघन नहीं करता ।9 इसलिए, नैतिकता की रक्षा के लिए, नैतिकता की पूर्णता को पूरा करने के लिए, मैं अपना मन नहीं बदलता, चाहे वे मुझे टोकरी में फेंक ही क्यों न दें।

II.3 नागा कैम्पेय्या का आचरण(13)

(कैंपेय्यनागचरीयम) देखें कैम्पेय्य-जातक क्रमांक 506

1 और फिर, जब मैं महान मानसिक शक्ति वाला कैम्पेय्यक (नागों का राजा) था,
तब भी मैं धर्मनिष्ठ था और नैतिक व्रतों का पालन करता था।

2 तब भी, एक सपेरे ने मुझे, जो धर्मनिष्ठ था और
व्रतों का पालन करता था, पकड़कर
राजद्वार पर प्रदर्शन करवाया।

3 उसने जो रंग सुझाया था—नीला, पीला या लाल—उधार लेकर,
मैंने उसकी इच्छा का पालन किया और उसके विचारों को साकार किया।

4 मैं सूखी भूमि को जल में और जल को सूखी भूमि में बदल सकता था
। यदि मैं उस पर क्रोधित होता, तो मैं
उसे पल भर में राख कर देता।

5 यदि मैं मन के वश में होता, तो मैं नैतिकता से विमुख हो जाता ; जो नैतिकता से विमुख हो जाता है,
वह सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता । 6 मैं स्वेच्छा से इस शरीर को चूर-चूर होने दूं, इसे इसी स्थान पर बिखेरने दूं —मैं किसी भी
कीमत पर नैतिकता का उल्लंघन नहीं करूंगा , भले ही इसे भूसे की तरह बिखेर दिया जाए।

II.4 कुलबोधि का आचरण(14)
(चुलाबोधिचरीयम) चुल्ला-बोधि-जातक # 443

1 फिर, जब मैं चुलाबोधि था, अत्यंत गुणी,
पुनर्जन्म को संकट समझते हुए, मैंने संसार त्याग दिया।

2 मेरी पत्नी, सुनहरे रंग की त्वचा वाली ब्राह्मण स्त्री
, ने पुनर्जन्म के चक्र में कोई अपेक्षा न रखते हुए,
संसार त्याग दिया।

3 आसक्ति रहित, सगे-संबंधियों से विमुख,
परिवार या संगति से कोई अपेक्षा न रखते हुए, गाँव और
बाज़ार की ओर चलते हुए, हम बनारस पहुँचे।

4 वहाँ हम विवेकपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे, परिवार या संगति में नहीं रहे
; हम दोनों राजमहल में एकांत में,
जहाँ शोरगुल कम था, निवास करते रहे।

5 जब राजा राजमहल देखने गए, तो उन्होंने ब्राह्मण
स्त्री को देखा। मेरे पास आकर उसने पूछा, “क्या वह तुम्हारी है?
वह किसकी पत्नी है?”

6 यह सुनकर मैंने उससे कहा, “वह मेरी पत्नी नहीं है;
वह उसी मत की है, उसी धर्म की है।”
(उसने उसे पत्नी मानना छोड़ दिया)

7 उस पर मोहित होकर उसने अपने भाड़े के लोगों से उसे पकड़वाया;
उसे बलपूर्वक महल के भीतरी कमरों में ले गया।

8 वह जो जल के घड़े को छूने मात्र से मेरी हो गई थी, जन्मजात,
उसी धर्म की—जब वह उसे घसीटकर
ले जा रहा था, तो मुझमें क्रोध उत्पन्न हुआ।

9 क्रोध उत्पन्न होते ही मुझे नैतिकता के व्रत का स्मरण आया
; उसी क्षण मैंने अपने क्रोध को रोक लिया,
उसे और बढ़ने नहीं दिया।

10 यदि कोई उस ब्राह्मण स्त्री पर तेज चाकू से हमला करे
, तो भी मैं आत्मज्ञान के लिए कभी
नैतिकता का उल्लंघन नहीं करूँगा।

11 वह ब्राह्मण स्त्री मुझसे असहमत नहीं थी, और न ही
मुझमें कोई शक्ति बची थी। मुझे सर्वज्ञता प्रिय थी,
इसलिए मैंने नैतिकता की रक्षा की।

II.5 भैंस राजा का आचरण (15)

(महिसारजचार्यम) महिषा-जातक क्रमांक 278 देखें

1 फिर, जब मैं एक भैंसा था, जो जंगल में घूम रहा था,
शरीर से बहुत सुविकसित, बलवान, विशाल और देखने में भयानक,

2 इधर-उधर किसी पर्वत-गुफा में, किसी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी पर और
किसी जलधारा के पास किसी वृक्ष की जड़ में,
भैंसों के लिए कोई न कोई स्थान था।

2 विशाल जंगल में घूमते हुए मुझे एक अनुकूल
स्थान दिखाई दिया। उस स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ और लेट गया।

4 तब एक दुष्ट, घिनौना, फुर्तीला बंदर वहाँ आया और
मेरे कंधे, माथे और भौहों पर पेशाब और मल त्याग किया।

5 और एक दिन, दूसरे, तीसरे और चौथे दिन भी,
उसने मुझे अपवित्र किया। मैं हर समय उससे व्याकुल रहता था।

6 एक यक्ष ने मेरी व्याकुलता देखकर मुझसे कहा, "
सींगों और खुरों वाले उस दुष्ट को मार डालो।"

7 यह कहकर मैंने उस यक्ष से कहा, "
तुम मुझे एक दुष्ट और
घिनौने शव से क्यों मढ़ रहे हो?

2 8 यदि मैं उस पर क्रोधित हो जाऊँ, तो मैं
उससे भी अधिक पतित हो जाऊँगा; और
मेरे द्वारा नैतिकता का उल्लंघन हो सकता है और बुद्धिमान लोग मेरी निंदा कर सकते हैं।

9 वास्तव में, तिरस्कारपूर्ण जीवन से बेहतर है पवित्रता का जीवन जीकर मरना
। 4 मैं अपने जीवन के लिए भी
किसी दूसरे को कैसे हानि पहुँचा सकता हूँ?

10 यह मेरे बारे में ऐसा सोचकर दूसरों के साथ भी ऐसा ही करेगा
और वे उसे वहीं मार डालेंगे; मेरे लिए यही मुक्ति होगी।

11 यह बुद्धिमान, निम्न, मध्यम और
उच्च वर्ग के लोगों के बीच अपमान को क्षमा करके, इस प्रकार अपने अभिमान के अनुसार, अपनी इच्छा के अनुसार, प्राप्ति करता है
।"

II.6 हिरण-राजा रुरु का आचरण (16)

(रुरुमिगारजचार्यम) रुरु-जातक क्रमांक 482 देखें

1 फिर, जब मैं रुरु, हिरणों का राजा, उत्तम
चमकीले सोने के समान, सर्वोच्च नैतिकता पर ध्यान केंद्रित कर रहा था,

तब मैं एक रमणीय, एकांत, निर्जन क्षेत्र में पहुँचा और वहाँ गंगा
के एक सुंदर तट पर निवास किया । 3 तब गंगा के ऊपरी भाग में, ऋणदाताओं से व्याकुल एक व्यक्ति गंगा में गिर पड़ा (यह सोचते हुए), "मैं जीऊँगा या मरूँगा"। 4 वह दिन-रात गंगा के विशाल जल में बहता हुआ , दयनीय विलाप करता हुआ गंगा के मध्य में चला गया। 5 मैंने गंगा के तट पर खड़े होकर, उसके विलाप की दयनीय ध्वनि सुनकर पूछा, "तुम कौन हो?" 6 और मेरे पूछने पर उसने अपने कार्य का स्पष्टीकरण दिया, " ऋणदाताओं से भयभीत होकर, मैं भयभीत होकर इस विशाल नदी में कूद गया।" 7 उस पर दया करके, अपनी जान जोखिम में डालकर, मैं नदी में उतरा और रात के अंधेरे में उसे बाहर खींच लाया। 8 जब मुझे पता चला कि वह ठीक हो गया है, तो मैंने उससे कहा, "मैं तुमसे एक वरदान मांगता हूँ: मेरे बारे में किसी को मत बताना।" 9 नगर जाकर, पूछे जाने पर उसने धन के लालच में यह बात बता दी। राजा को लाकर वह मेरे पास आया। 10 मैंने जो कुछ किया था, वह सब राजा को बता दिया। राजा ने ये शब्द सुनकर अपना तीर तैयार किया और कहा, "यहाँ मैं अपने इस नीच, विश्वासघाती मित्र को मार डालूँगा।" 11 मैंने उसकी रक्षा करते हुए स्वयं को उसके स्थान पर रखा और कहा, "हे महाराज, उसे रहने दीजिए, मैं आपकी इच्छा और प्रसन्नता पूरी करूँगा।" 12 मैंने अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा की, अपने जीवन की नहीं, क्योंकि उस समय मैं स्वयं जागृति के लिए नैतिक मूल्यों का पालन कर रहा था।

II.7 मतंगा का आचरण(17)

(मटंगचर्यम्) मातंग-जातक क्रमांक 497 देखें 1 और फिर, जब मैं मटंग नाम

का एक जटाधारी तपस्वी था, जो घोर तपस्या कर रहा था, तब मैं नैतिकता का पालन करने वाला, एकाग्रचित्त व्यक्ति था। 2 मैं और एक ब्राह्मण दोनों गंगा के किनारे रहते थे; मैं ऊपरी भाग में रहता था, ब्राह्मण निचले भाग में। 3 नदी के किनारे घूमते हुए उसने नदी के ऊपर स्थित मेरी कुटिया देखी। वहाँ मेरा अपमान करते हुए उसने मुझे श्राप दिया कि मेरा सिर फट जाए (सातवें दिन सात टुकड़ों में)। 4 यदि मैं उससे क्रोधित होता, यदि मैंने नैतिकता की रक्षा न की होती, तो मैं (केवल) उसे देखकर ही उसे राख कर सकता था। 5 जब उसने क्रोधित होकर, भ्रष्ट मन से मुझे श्राप दिया, तो वह श्राप उसके ही सिर पर पड़ा—मैंने एक (चतुर) युक्ति से उसे मुक्त कर दिया । (जातक में वर्णित है कि बोधिसत्व (मतंग) ने सातवें दिन सूर्योदय को रोककर लोगों से कहा कि यदि वे सूर्योदय होने देंगे तो ब्राह्मण तपस्वी का सिर सात टुकड़ों में टूट जाएगा। इसलिए उन्होंने लोगों को मिट्टी का एक ढेला लाकर ब्राह्मण के सिर पर रखने का निर्देश दिया। फिर उन्होंने सूर्योदय होने दिया, जिसके बाद मिट्टी का ढेला सात टुकड़ों में टूट गया। इस प्रकार ब्राह्मण अपने श्राप के प्रभाव से मुक्त हो गया।) 6 मैंने अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा की, मैंने अपने जीवन की रक्षा नहीं की, क्योंकि उस समय मैं स्वयं ज्ञानोदय के लिए नैतिक मूल्यों का पालन कर रहा था।

II.8 देवपुत्र धम्म का आचरण (18)

(धम्मदेवपुत्तचर्यम्) धम्म-जातक क्रमांक 457 देखें

1 और फिर, जब मैं, एक विशाल दल और महान मानसिक
शक्ति से युक्त, धम्म नाम से था, तब मैं एक महान यक्ष था,
समस्त जगत के प्रति करुणामय।

2 दस कुशल कर्मों के प्रति जनता को प्रेरित करते हुए, मैं
मित्रों और सेवकों के साथ गांवों और बाज़ारों का भ्रमण करता था।

3 एक दुष्ट, लोभी यक्ष, दस दुष्ट
कर्मों का प्रचार करते हुए, वह भी मित्रों और
सेवकों के साथ पृथ्वी पर भ्रमण कर रहा था।

4 हम, धम्म और अधम्म के वक्ता, दोनों शत्रु,
रथ के डंडों को रथ के डंडों से टकराते हुए, आमने-
सामने आए।

5 अच्छे और बुरे के बीच एक भयंकर झगड़ा हुआ
और मार्ग से उतरने के लिए एक महान युद्ध आसन्न था।
(यह मुठभेड़ आकाश में हुई)

6 यदि मैं उससे क्रोधित होता, यदि मैंने तपस्वी गुणों को भंग किया होता , तो मैं उसे और उसके साथियों को धूल
में मिला सकता था । 7 परन्तु मैंने नैतिकता की रक्षा करते हुए, अपने मन को शांत किया (खन्ती और मेट्टा, धीरज और प्रेम जैसे दो गुणों
को जागृत करते हुए), और अपने लोगों के साथ दुष्ट यक्ष के मार्ग पर उतर गया । 8 जैसे ही मैं अपने विचारों को शांत करके उस मार्ग से
उतरा, धरती ने तुरंत दुष्ट यक्ष के लिए एक दरार बना दी।

II.9 एलिनासत्तू का आचरण(19)

(अलिनासत्तुचरियाम्) जयअदिष-जातक क्रमांक 513 देखें

1 पंचाल राज्य में, अतुलनीय
नगर कामिला में, जयअदिष नामक राजा ने नैतिकता के गुण प्राप्त किए थे।

2 मैं उस राजा का पुत्र था, सुशिक्षित, महान नैतिकता वाला,
अलिनासत्तु, सद्गुणों से युक्त, और अपने
सेवकों की सदादेखभाल करने वाला।

3 मेरे पिता हिरण का शिकार करने गए थे, तभी उनकी मुलाकात एक आदमखोर से हुई। उसने
मेरे पिता को पकड़ लिया और कहा, "तुम मेरे शिकार हो, हिलना मत।"

4 उसके ये शब्द सुनकर मेरे पिता भयभीत हो गए और
डर से कांपने लगे; उस आदमखोर को देखकर उनकी जांघें अकड़ गईं।

5 “हिरण का मांस लेकर मुझे जाने दो।”
ब्राह्मण को धन देने और वापस आने का वादा करके, मेरे पिता ने
मुझसे कहा:

6 “पुत्र, राज्य की देखभाल करना, इस नगर की उपेक्षा मत करना। मैंने
उस आदमखोर से वापस आने का वादा किया है।”

7 अपने माता-पिता का आदर करते हुए, स्वयं को उनके स्थान पर रखकर,
धनुष और तलवार त्यागकर मैं नरभक्षी के पास गया।

8 शायद मेरे हाथों में हथियार होने से वह
डर जाए। यदि मैं उसमें भय उत्पन्न करता तो नैतिकता का
उल्लंघन होता।

9 मैंने नैतिकता भंग होने के भय से उससे अप्रिय बातें नहीं कहीं
। प्रेम और दया भाव से
, मैंने ये शब्द कहे:

10 "एक बड़ी आग जलाओ। मैं पेड़ से गिरकर उस पर आ गिरूँगा।
समय आने पर, हे दादाजी, तुम मुझे खा सकते हो।"

11 इस प्रकार नैतिक प्रतिज्ञा के कारण मैंने अपने जीवन की रक्षा नहीं की। और मैंने प्राणियों
पर आक्रमण करने की उसकी प्रवृत्ति को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया ।

II.10 शंखपाल का आचरण(20)
(संखपालचर्यम) संखपाल-जातक क्रमांक 524 देखें

1 और फिर, जब मैं संखपाल (सांप) था, तब मैं महान मानसिक
शक्ति से परिपूर्ण था, मेरे हथियार के रूप में मेरे नुकीले दांत थे, मैं अत्यंत विषैला, दो
जीभों वाला और नागों का स्वामी था।

2 विभिन्न लोगों से भरी एक राजमार्ग के चौराहे पर,
चार कारकों पर दृढ़ निश्चय करके, मैंने अपना
निवास स्थान बनाया।

3 जिसे भी मेरी भीतरी त्वचा, बाहरी त्वचा, मांस,
स्नायु या हड्डियों की आवश्यकता हो, वह उसे ले जाए, जैसा है वैसा ही। 4 कठोर, निर्दयी और निर्दयी शिकारी लड़कों ने मुझे देखा और
अपने हाथों में लाठी और डंडे लेकर मेरे

पास आए । 5 मेरी नाक, पूंछ और रीढ़ की हड्डी को छेदकर, मुझे एक डंडे पर रखकर, शिकारी लड़के मुझे ले गए। 6 यदि मैं चाहूँ तो अपनी नाक की साँस से ही इस समुद्र से घिरी धरती को, जंगलों और पहाड़ों सहित, जला सकता था। 7 चाहे मुझे खंभों से छेदा गया हो, चाहे चाकुओं से काटा गया हो, मैं शिकारी-लड़कों से क्रोधित नहीं था—यही मेरी नैतिकता की पूर्णता थी।

भाग III: त्याग की पूर्णता

(नेक्खम्मपरमिता)

III.1 युधांजय का आचरण(21)
(युधंजयचार्यम) युवंजय-जातक # 460 देखें

1 जब मैं युधंजय था, राजा का पुत्र, अतुलनीय यश वाला, सूर्य की गर्मी
में गिरी ओस की एक बूंद को देखकर रोमांचित हो गया । 2 इसे ही संकेत मानकर मैंने अपना रोमांच और बढ़ा लिया। अपने माता-पिता का आदर करते हुए मैंने संन्यास लेने के लिए (उनकी सहमति) मांगी । 3 राज्य के नागरिकों और निवासियों ने हाथ जोड़कर मुझसे विनती की, "पुत्र, आज ही इस समृद्ध और संपन्न राज्य की देखभाल कर लेना।" 4 जब राजा, दरबारी महिलाएं, नागरिक और राज्य के निवासी बड़ी पीड़ा से विलाप कर रहे थे, तब मैं बिना किसी अपेक्षा के निकल पड़ा। 5 आत्मज्ञान के लिए ही मैंने समस्त पृथ्वी, अपने रिश्तेदारों, अपने दल-पत्नियों और यश का त्याग कर दिया और इसके बारे में कुछ भी नहीं सोचा। 6 मुझे अपने माता-पिता से कोई घृणा नहीं थी, न ही अपने दल-पत्नियों से। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी , इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.2 सोमनासा का आचरण(22)
(सोमनसचरियार्) सोमनस-जातक क्रमांक 505 देखें

1 और फिर, जब मैं अतुलनीय नगर इंदपट्टा (वर्तमान में दिल्ली) में था, तब
मैं (राजा का) पुत्र सोमनस था। मैं
अपने माता-पिता का प्रिय था, उन्हें मेरी बहुत चाह थी, मैं उनका प्रिय था और मेरी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

2 मैं गुणी, अच्छे गुणों से युक्त, सहज और
मधुर वाणी वाला, बड़ों का आदर करने वाला, विनम्र और
सहानुभूति के मूल सिद्धांतों में निपुण था।

3 एक पाखंडी तपस्वी उस राजा का प्रिय था। वह
बाग-बगीचे और फूलों की झाड़ियाँ उगाकर अपना जीवन यापन करता था।

4 उसे देखकर, जो धान के दाने के बिना भूसे के ढेर के समान
और अंदर से खोखले केले के पेड़ के समान था,
मैंने सोचा,

5 "यह तो अपनी जीविका के लिए
अच्छे आचरण का पालन नहीं करता, संन्यास से विमुख हो गया है
और लज्जा और पवित्र आचरण को त्याग दिया है।"

6 सीमावर्ती क्षेत्र में पड़ोसी जंगली
जनजातियों का आतंक था। मेरे पिता उसे शांत करने के लिए जाते समय मुझे निर्देश दिया,

7 "हे मेरे प्रिय, कठोर तपस्या करने वाले जटाधारी तपस्वी की उपेक्षा मत करना
। वह हमारी सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है;
उसकी इच्छाओं के अनुरूप कार्य करना।"

8 उसकी सेवा में जाते हुए मैंने ये शब्द कहे, "आशा है आप
कुशल मंगल होंगे, गृहस्थ, या आपके लिए क्या लाया जा सकता है?"

9 इस पर अहंकार से भरा वह ढोंगी क्रोधित हो गया और

बोला, “मैं तुम्हें मरवा दूंगा या राज्य से निकाल दूंगा।”

10 सीमावर्ती क्षेत्र में शांति स्थापित करने के बाद राजा ने उस
धोखेबाज से कहा, “आशा है आदरणीय महोदय, आप कुशल मंगल होंगे और
आपका सम्मान हुआ होगा?” उस दुष्ट ने राजा को बताया कि राजकुमार को क्यों
मारा जाना चाहिए।

11 उसकी बातें सुनकर पृथ्वी के स्वामी (राजा) ने आज्ञा दी,
“जहाँ वह हो, उसका सिर काट डालो और उसके
चार टुकड़े करके गली-गली घुमाओ—यही
उन लोगों का अंजाम है जो जटाधारी
तपस्वियों का अपमान करते हैं।”

12 तदनुसार, क्रूर, निर्दयी और बेरहम जल्लाद चले गए
और मुझे, जो अपनी माता की गोद में बैठा था, घसीटकर
ले गए।

13 जब वे मुझे कसकर बाँध रहे थे, तब मैंने उनसे कहा, “
मुझे तुरंत राजा के सामने पेश होने दीजिए—मुझे
राजा से कुछ काम है।”

14 उन्होंने मुझे उस दुष्ट राजा के सामने पेश होने दिया, जो उस दुष्ट का अनुयायी था
। जब मैंने उसे देखा, तो मैंने उसे
अपने वश में कर लिया।

15 उसने मुझसे क्षमा माँगी और मुझे महान राज्य दे दिया।
लेकिन मैंने अंधकार को चीरते हुए,
बेघरपन (सन्यासी जीवन) की ओर प्रस्थान किया।

16 ऐसा नहीं था कि मुझे महान राज्य अप्रिय था,
इंद्रिय सुखों का आनंद लेना अप्रिय नहीं था। सर्वज्ञता
मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.3 योगाहार का संचालन(23)
(आयोगराचर्यम) देखें योगरा-जातक # 510

1 और फिर, जब मैं काशी के राजा का अपना पुत्र था,
लोहे के घर में पला-बढ़ा, तो मेरा नाम अयघरा था।
(घनिष्ठ कारावास में पाला-पोसा गया, उसे यहाँ इसलिए पाला गया ताकि
अमानवीय प्राणियों से परेशानी न हो,
मादा यक्षों ने उसके दो भाइयों को खा लिया था)

2 (मेरे पिता ने कहा), “कठिनाई से जीवन प्राप्त करके,

3 राज्यों, नगरों और लोगों के साथ।” उस वीर योद्धा को प्रणाम करते हुए
, हाथ जोड़कर

अभिवादन करते हुए, मैंने ये शब्द कहे:

4 “पृथ्वी पर चाहे जो भी प्राणी हों, नीच, ऊँचे, मध्यम,
बिना किसी संरक्षण के वे सब अपने-अपने घर में अपने
सगे-संबंधियों के साथ बड़े होते हैं।

3 मुझे इस तरह कैद में पालने का यह तरीका
संसार में अनोखा है। मैं लोहे के घर में पला-बढ़ा हूँ, जहाँ न
चाँद की रोशनी है और न सूरज की।

6 अपनी माँ के गर्भ से, जो घृणित और आपत्तिजनक पदार्थों से भरा था, मुक्त होकर
, मुझे फिर से
लोहे के घर में और भी भयानक पीड़ा में डाल दिया गया।

7 यदि मैं, इस तरह की सबसे क्रूर पीड़ा सहकर, संप्रभुता में आनंद पाता, तो मैं दुष्टों में
सबसे नीच होता । 8 मैं शरीर से ऊब गया हूँ, मुझे संप्रभुता की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं ऐसी जगह पर विलीन होना चाहता हूँ जहाँ मृत्यु मुझे कुचल न सके।” 9 जब जनता ज़ोर-ज़ोर से विलाप कर रही थी, तब मैंने ऐसा सोचते हुए, जैसे हाथी अपनी लालसाओं के बंधन तोड़कर जंगल में प्रवेश कर जाता है । 10 मुझे माता-पिता अप्रिय नहीं थे, न ही मुझे महान यश अप्रिय था । सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने राज्य का त्याग कर दिया।

III.4 आचरण [जिसमें] कमल के डंठल शामिल हैं (24)
(भिसचर्यम) भीस-जातक #488 देखें

1 फिर, जब मैं काशी नगर के तेजस्वी और अतुलनीय नगर में था, तब एक विद्वान (ब्राह्मण) परिवार
में मेरी एक बहन और सात भाई पैदा हुए । 2 मैं उनमें से पहला था, और शुद्ध विवेक से परिपूर्ण था। पुनर्जन्म को एक जोखिम मानते हुए, मैंने वैराग्य में अत्यंत प्रसन्नता पाई। 3 मेरे माता-पिता द्वारा भेजे गए मेरे मित्रों ने सर्वसम्मति से मुझे इंद्रिय सुखों की ओर आमंत्रित किया: “वंश को बनाए रखो”, उन्होंने कहा। 4 गृहस्थी में सुख लाने वाली बातों के बारे में उन्होंने जो कुछ भी कहा , वह मुझे कठोर, गर्म हल के समान लगा। 5 फिर उन्होंने मुझसे, जो गृहस्थी का त्याग कर रहा था, मेरी आकांक्षा के बारे में पूछा, “मित्र, तुम्हारी क्या आकांक्षा है कि तुम इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते?” 6 मैंने अपना भला चाहकर, जो लोग मेरी भलाई चाहते थे, उनसे कहा, “मैं गृहस्थ जीवन की इच्छा नहीं रखता, मुझे त्याग में अत्यंत प्रसन्नता होती है।” 7 जब उन्होंने मेरी बात सुनी, तो उन्होंने मेरे माता-पिता को सूचित किया । मेरे माता-पिता ने कहा, “तो फिर, हम सब चल रहे हैं।” 8 हम, मेरे माता-पिता, बहन और सातों भाई, अपार धन-संपत्ति त्यागकर, घने जंगल में प्रवेश कर गए।

III.5 बुद्धिमान सोना का आचरण (25)

(सोनापंडितचर्यम) सोना-नंद-जातक क्रमांक 532 देखें

1 फिर, जब मैं ब्रह्मवद्धन (बनारस) नगर में था, तब मेरा
जन्म एक उच्च, प्रतिष्ठित और अत्यंत धनी परिवार में हुआ था।

2 तब भी, जब मैंने देखा कि (संपूर्ण) संसार अंधकार
में डूबा हुआ है, तो मेरा मन पुनर्जन्म से ऐसे विमुख हो गया मानो
किसी अंकुश से बुरी तरह चुभ गया हो।

3 अनेक प्रकार की बुराइयाँ देखकर, मैंने तब सोचा,
"घर के जीवन से विदा होकर मैं वन में कब प्रवेश करूँगा
?"

4 तब भी मेरे सगे-संबंधियों ने मुझे इंद्रिय-सुखों के भोग के लिए आमंत्रित किया । मैंने उन्हें भी अपनी इच्छा बताते हुए कहा, " मुझे इन चीजों के लिए आमंत्रित
न करें ।" 5 मेरे छोटे भाई, जिनका नाम नन्द था, उन्होंने भी मेरे नैतिक उपदेशों का अनुसरण करते हुए, वनवास में उतना ही आनंद पाया। 6 मैं सोना, नंदा और मेरे माता-पिता, सबने अपनी संपत्ति त्यागकर उस विशाल वन में प्रवेश किया।

दृढ़ संकल्प की पूर्णता
(अधित्थनपरमिता)

III.6 बुद्धिमान तेमत्या का आचरण (26)
(तेमियापंडितचर्यम) मुगा-पक्खा-जातक क्रमांक 538 देखें ।

1 फिर, जब मैं काशी के राजा का इकलौता पुत्र था और
मेरा नाम मुगापक्खा (मूक और लंगड़ा) था, तो उन्होंने मुझे तेमिया कहा।
(जन्म के दिन भारी वर्षा हुई और मैं भीग गया, इसलिए मेरा नाम तेमिया पड़ा।)

2 उस समय राजा की सोलह हजार स्त्रियों में से किसी को भी पुत्र
जन्म नहीं हुआ था। कई दिनों और रातों के बाद, मैं
इकलौता पुत्र बनकर उठा।

3 मेरे पिता ने मेरे पलंग पर एक सफेद पर्दा डालकर मेरा
पालन-पोषण किया, मैं एक प्रिय पुत्र था, अच्छे कुल का, प्रकाश लाने वाला, जो
बड़ी मुश्किल से प्राप्त हुआ था।

4 जब मैं उस शानदार पलंग पर सोने के बाद जागा, तो मैंने
वह पीला पर्दा देखा जिसके सहारे मैं नरक में गया था।
(राजाओं को बहुत कठोर होना पड़ता था, जिसके कारण उन्हें बहुत कर्मफल भुगतने पड़ते थे और
निरय (नरक) में जाना पड़ता था। वह अपने पिछले जन्म में निरय को प्राप्त हुआ था।)

5 धूपदानी को देखकर मेरे मन में घोर भय उत्पन्न हुआ। मैंने
निर्णय लिया, "मैं इससे कैसे मुक्ति पाऊँगा?"

6 एक देवी (जो पहले मेरी रक्त संबंधी थीं,
पिछले जन्म में मेरी माता)
, मेरी इच्छा जानकर, मुझे व्यथित देखकर, मुझे

राजा बनने से बचने के लिए कुछ व्यवहार करने का सुझाव दिया:

7 "बुद्धिहीन बनो, सभी प्राणियों के सामने मूर्ख की तरह व्यवहार करो, सभी
लोग तुम्हारा उपहास करें—इस प्रकार तुम्हें मुक्ति मिलेगी।"
(गूंगा, बहरा और अपंग की तरह व्यवहार करो)

8 यह सुनकर मैंने उनसे कहा, "
देवी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आप मेरी मुक्ति चाहती हैं,
प्रिय, आप मेरा कल्याण चाहती हैं, देवी।"

9 जब मैंने उसकी बातें सुनीं, तो मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे
समुद्र में सूखी ज़मीन मिल गई हो। मैं प्रसन्न और रोमांचित होकर
तीन बातों पर दृढ़ निश्चय कर बैठा:

10 मैं गूंगा, बहरा और लंगड़ा था—चल नहीं सकता था।
इन्हीं बातों पर दृढ़ निश्चय करके मैं सोलह वर्ष तक जीवित रहा।

11 तब उन्होंने मेरे हाथ, पैर, जीभ और कान मलकर,
मुझमें कोई दोष न देखकर, मुझे अशुभ घोषित कर दिया।

12 तब देश के सभी लोग, सेनापति और पुजारी,
सब एकमत होकर मुझे त्यागने के पक्षधर हो गए।

13 जब मैंने उनकी राय सुनी, तो मैं प्रसन्न और रोमांचित हो गया,
क्योंकि जिस उद्देश्य से मैंने तपस्या की थी,
वह उद्देश्य मेरे लिए सफल हुआ था।

14 मुझे स्नान कराकर, मरहम मलकर,
मेरे सिर पर राजसी मुकुट बांधकर, विधिपूर्वक अभिषेक करके,
उन्होंने मुझे धूप सेंकने के लिए शहर का चक्कर लगवाया।

15 उसे सात दिनों तक ऊपर उठाए रखने के बाद, (एक दिन) जब सूर्य उदय
हुआ, सारथी मुझे बाहर ले गया।
रथ एक जंगल में आया।

16 रथ को खुले स्थान पर रोककर, लगाम लगे घोड़े को
अपने हाथ से मुक्त करके, सारथी ने मुझे दफनाने के लिए एक गड्ढा खोदा
।

17 विभिन्न
मार्गों में मेरे दृढ़ संकल्प से भयभीत होकर, मैंने उस दृढ़ संकल्प को नहीं तोड़ा जो स्वयं
ज्ञानोदय के लिए था । 18 माता-पिता मुझे अप्रिय नहीं थे और न ही स्वयं मुझे अप्रिय था। सर्वज्ञता मुझे प्रिय थी, इसलिए मैंने उसी पर दृढ़
संकल्प किया। 19 इन्हीं कारकों पर दृढ़ संकल्प करते हुए मैं सोलह वर्ष तक जीवित रहा। दृढ़ संकल्प में मेरे समान कोई नहीं था, यही
मेरे दृढ़ संकल्प की पूर्णता थी।

सत्य की पूर्णता
(सक्कापरामिता)

III.7 बंदर राजा का आचरण(27)
(कपिराजचार्यम) वानरिन्द-जातक क्रमांक 57 देखें

1 जब मैं नदी के किनारे की दरार में बने मांद में रहने वाला बंदर था और
मगरमच्छ मुझे परेशान कर रहा था, तब मेरे पास (द्वीप पर) जाने का कोई अवसर नहीं था।

2 जिस स्थान पर मैं (चट्टान पर) खड़ा होता था, जब मैं
इस किनारे से कूदकर दूसरे किनारे पर उतरता था, वहाँ
मेरा शत्रु, हत्यारा और भयंकर रूप वाला मगरमच्छ बैठा था।

3 उसने मुझसे कहा, 'आओ'। मैंने उससे कहा, 'मैं आ रहा हूँ'।
उसके सिर पर पैर रखकर मैं दूसरे किनारे पर पहुँच गया।

4 मैंने उससे कोई झूठ नहीं बोला, मैंने अपने वचन के अनुसार कार्य किया।
सत्य में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी
सत्य की पूर्णता थी।

III.8 बुद्धिमान सक्का का आचरण (28)
(सच्चसवयपंडितचर्यम)

1 और फिर, जब मैं सच्च नामक तपस्वी था, तब मैंने
सत्य के माध्यम से संसार की रक्षा की, मैंने लोगों को एकजुट किया।

III.9 युवा बटेर का आचरण(29)
(वट्टपोतकचरीयम्) वट्टक-जातक क्रमांक 35 देखें

1 फिर, जब मैं मगध में एक छोटा बटेर था, पंख अभी
तक विकसित नहीं हुए थे, नवजात शिशु, घोंसले में मांस का एक टुकड़ा,

2 मेरी माँ ने मुझे अपनी चोंच में लाए भोजन से पाला;
मैं उसके संपर्क में रहकर जीवित रहा, मुझमें शारीरिक
शक्ति नहीं थी।

3 हर साल गर्मी के मौसम में जंगल में आग लग जाती थी। एक बार
, काली लकीरों वाली आग हमारे करीब आ गई।

4 धूम-धूम की आवाज करती हुई वह भीषण
आग धीरे-धीरे मेरे करीब आ गई।

5 आग की भयंकरता से भयभीत होकर मेरे माता-पिता ने
मुझे घोंसले में ही छोड़ दिया और अपनी जान बचाई।

6 मैंने अपने पैरों और पंखों से संघर्ष किया। मुझमें शारीरिक शक्ति नहीं थी। क्योंकि मैं
जा नहीं सका, तब मैंने वहाँ यह सोचा:

7 जिनके पास मुझे भयभीत, डरी हुई, कांपती हुई भागना चाहिए था, वे
मुझे पीछे छोड़कर चले गए हैं। आज मुझे क्या करना चाहिए?

8 संसार में नैतिकता का गुण है, सत्य है, पवित्रता है,
दया है। इसी सत्य से मैं सत्य की सर्वोच्च प्रतिज्ञा करूँगा
:

9 धम्म की शक्ति पर चिंतन करते हुए, पूर्व विजेताओं को याद करते हुए , सत्य की शक्ति पर भरोसा करते हुए, मैंने सत्य की
प्रतिज्ञा की : 10 "ऐसे पंख हैं जो उड़ नहीं सकते, ऐसे पैर हैं जो चल नहीं सकते। माता-पिता चले गए हैं। जातवेद (अग्नि), पीछे हट
जाओ।" 11 मेरे द्वारा प्रतिज्ञा किए गए सत्य से, भयंकर जलती हुई अग्नि सोलह कार्लस पीछे हट गई (और) जल तक पहुँची हुई अग्नि
के समान हो गई। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी सत्य की पूर्णता थी।

III.10 मछली-राजा का आचरण (30)
(मच्छराजचर्यम) मच्छा-जातक #75 देखें

1 फिर, जब मैं एक विशाल झील में मछली-राजा था, तो
गर्मी के मौसम में सूर्य की भीषण गर्मी से झील का पानी सूख गया।

2 तब कौवे, गिद्ध, बगुले, बाज और फाल्कन
मछलियों के पास बैठकर उन्हें दिन-रात खा जाते थे।

3 वहाँ अपने सगे-संबंधियों के साथ पीड़ित होकर मैंने सोचा,
"अब मैं अपने सगे-संबंधियों को इस कष्ट से कैसे मुक्त करूँ
?"

4 धर्म में निहित अच्छाई पर विचार करके, मैंने सत्य को
सहारा पाया। सत्य में दृढ़ रहकर, मैंने
अपने सगे-संबंधियों के उस भीषण विनाश को दूर किया।

5 सच्चे धर्म का स्मरण करते हुए, सर्वोच्च
हित को ध्यान में रखते हुए, मैंने सत्य की ऐसी प्रतिज्ञा की जो
संसार में शाश्वत और स्थायी रहेगी:

6 "जहाँ तक मुझे स्वयं का स्मरण है, जब से मैं
विवेकवान हुआ हूँ, मैंने
जानबूझकर किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाई है। इस सत्य की प्रतिज्ञा से
पज्जुन्न (देवताओं के राजा, सक्का/इंद्र) वर्षा करें।

7 हे पज्जुन्न, गरज! कौवों के खजाने को नष्ट कर दे,
कौवों को दुःख से घेर ले, मछलियों को दुःख से मुक्त कर दे।"

8 और सत्य की इस गौरवशाली प्रतिज्ञा के तुरंत बाद
, पज्जुन्न गरज उठे; और क्षण भर में उन्होंने इतनी
वर्षा की कि ऊँचे-नीचे क्षेत्र जल से भर गए।

9 सत्य की गौरवशाली प्रतिज्ञा के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाते हुए
, सत्य की शक्ति और प्रज्वलन पर भरोसा करते हुए, मैंने
एक भयंकर तूफानी बादल से वर्षा करवाई। सत्य के मामले में मेरे बराबर कोई नहीं था
—यही सत्य की मेरी पूर्णता थी।

III.11 कन्हादीपायन का आचरण(31)

(कन्हदीपायनचर्यम्) कंहड़ीपायन-जातक #444

1 फिर, जब मैं कफदीपायन नामक ऋषि था, तब मैं
पचास वर्षों से अधिक समय तक असंतुष्ट रहा।

2 मेरे इस असंतुष्ट मन के बारे में किसी को पता नहीं था क्योंकि मैंने
किसी को नहीं बताया था; असंतोष मेरे मन में बना रहा।

3 मेरे एक मित्र, महान
ऋषि, मंदाब्य, जो ब्रह्मयात्रा में मेरे साथी थे, ने एक पूर्व कर्म के कारण
सूली पर चढ़ाए जाने का दंड प्राप्त किया।

4 मैंने उनकी देखभाल करने के बाद उन्हें स्वस्थ किया।
अनुमति लेकर मैं अपने आश्रम लौट गया।

5 मेरे एक ब्राह्मण मित्र, अपनी पत्नी और छोटे बेटे के साथ—
तीनों एक साथ अतिथि बनकर आए।

6 जब मैं अपने
आश्रम में बैठकर उनसे अभिवादन कर रहा था, तभी उस युवक ने एक गेंद फेंकी और एक
विषैले साँप को क्रोधित कर दिया।

7 तब वह छोटा लड़का गेंद के
जाने का रास्ता खोजते हुए विषैले साँप के सिर को हाथ से छू गया।

8 उसके छूने से क्रोधित साँप ने अपने प्रबल विष के बल पर
तुरंत उस युवक को काट लिया।

9 विषैले साँप के काटने से युवक
ज़मीन पर गिर पड़ा, जिससे मुझे बहुत पीड़ा हुई; माता-पिता के उस दुःख ने
मुझे भी प्रभावित किया।

10 दुःख से व्याकुल और विचलित लोगों को सांत्वना देते हुए,
मैंने सर्वप्रथम सत्य का सर्वोच्च और अत्यंत गौरवशाली कथन किया
:

11 "सात दिनों तक मैंने श्रद्धा भाव से, पुण्य की कामना करते हुए
ब्रह्मयात्रा की। उसके बाद,

पचास वर्षों से अधिक समय तक

मैंने यह यात्रा अनिच्छा से ही की। इस सत्य से उनका कल्याण हो
, विष नष्ट हो, और यन्नदत्त (लड़के का नाम) जीवित रहे।" 13 मेरे द्वारा इस सत्य की पुष्टि करने पर, विष के प्रभाव से कांप रहा

ब्राह्मण युवक संभलकर खड़ा हो गया और ठीक हो गया। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था —यही सत्य में मेरी पूर्णता थी।

III.12 सुतासोमा का आचरण(32)

(सुतसोमाचरियाम्) महा-सुतसोमा-जातक #537

1 फिर, जब मैं सुतसोमा, पृथ्वी का स्वामी,
एक नरभक्षी द्वारा बंदी बनाया गया, तब मुझे एक ब्राह्मण से किया अपना वचन याद आया।

2 उसने सौ योद्धाओं को हथेलियों से बांधकर
(रस्सी के लिए छेद बनाकर) सुखा दिया और
मुझे यज्ञ के लिए ले आया।

3 नरभक्षी ने मुझसे पूछा, "क्या तुम अपनी मुक्ति चाहते हो? यदि तुम मुझसे फिर
मिलने आओगे तो मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार कार्य करूंगा ।" 4 मैंने उसे भोर में लौटने का आश्वासन दिया और रमणीय नगर की ओर बढ़ते हुए राज्य का त्याग कर दिया। 5 पूर्व विजेताओं द्वारा अनुसरण किए गए अच्छे धर्म का स्मरण करते हुए , ब्राह्मण को धन देकर, मैं नरभक्षी के पास गया। 6 मुझे कोई संदेह नहीं था कि वह मुझे धोखा देगा या नहीं। सत्य की रक्षा करते हुए मैं अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए आगे बढ़ा। सत्य में मेरे समान कोई नहीं था —यही सत्य की मेरी पूर्णता थी।

प्रेम और करुणा की पूर्णता
(मेट्टापरमिता)

III.13 सुवन्ना-समा का आचरण(33)
(सुवन्नसमाचरियम) समा-जातक #540 देखें

1 जब मैं, सक्का द्वारा सृजित समा, एक वन में था, तब मैंने
वन के शेरों और बाघों को प्रेम भाव से भर दिया।

2 शेरों और बाघों, तेंदुओं, भालुओं, भैंसों
और चित्तीदार हिरणों और जंगली सूअरों से घिरा हुआ मैं वन में रहता था।

3 न तो कोई मुझसे भयभीत होता था और न ही मैं किसी से भयभीत होता था;
प्रेम भाव की शक्ति से पोषित होकर मैं उस वन में आनंदित रहता था।

III.14 एकराज का आचरण(34)
(एकराजचर्यम्) एकराज-जातक क्रमांक 303 देखें

1 और फिर, जब मैं एकराज कहलाया, व्यापक रूप से प्रसिद्ध,
सर्वोच्च नैतिकता पर दृढ़ निश्चयी होकर, इस विशाल

पृथ्वी पर शासन करता था।

2 बिना किसी अपवाद के, मैंने दस कुशल कर्मों का अभ्यास किया, और
उदारता के चार आधारों के साथ जनता के प्रति दयालुता का भाव रखा।

3 जब मैं इस लोक और परलोक के लिए इस प्रकार परिश्रम कर रहा था, तब दहसेना ने मेरे नगर को (शस्त्र बल
से) लूटकर , 4 राजा के आश्रितों, नगरवासियों, सशस्त्र बलों और देशवासियों सहित सभी को अपने कब्जे में लेकर, मुझे एक गड्ढे में दफना दिया। 5 जब उसने (सभी) मंत्रियों, समृद्ध राज्य, मेरे भीतरी नगर (राजमहल) पर कब्जा कर लिया, तो मैंने अपने प्रिय पुत्र को भी ले जाते हुए देखा। प्रेम-कृपा में मेरे समान कोई नहीं था—यही मेरी प्रेम-कृपा की पूर्णता थी।

समभाव की पूर्णता
(उपक्खपारमिता)

III.15 महान आश्चर्यजनक आचरण(35)
(महालोमहामशकारियम)

1 मैं एक श्मशान में एक कंकाल के सहारे लेट गया।
देहाती बच्चों की भीड़ मेरे पास आई और मेरा बहुत
उपहास करने लगी।

2 कुछ अन्य लोग, प्रसन्न और उत्साहित होकर, मुझे
अनेक प्रकार के इत्र, मालाएँ और तरह-तरह के भोजन भेंट करने आए।

3 जिन्होंने मुझे पीड़ा दी और जिन्होंने मुझे
सुख दिया—मैं उन सभी के प्रति एक समान था; मुझमें दया या क्रोध का
भाव नहीं था।

4 सुख और दुःख, सम्मान और निंदा के प्रति संतुलित होकर
, मैं सभी परिस्थितियों में एक समान था
—यही मेरी समता की पूर्णता थी।

समता की पूर्णता पर व्याख्या यहीं समाप्त होती है।

ENVOI-VERSES

1. अनेक पूर्व जन्मों में अनेक प्रकार के दुख और अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करके , मैंने परम
आत्मज्ञान प्राप्त किया।

2. उचित दान देकर,
नैतिकता का पूर्ण पालन करके, और
वैराग्य में परिपूर्ण होकर, मैंने परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।
3. विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करके, परम
ऊर्जा में संलग्न होकर, और धैर्य की परिपूर्णता प्राप्त करके, मैंने
परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

4. दृढ़ संकल्प करके, सत्य
का पालन करते हुए, और प्रेम की परिपूर्णता प्राप्त करके, मैंने
परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

5. लाभ और हानि, मान-सम्मान और निंदा,
आदर और अपमान—सभी परिस्थितियों में एकसमान रहकर
, मैंने परम आत्मज्ञान प्राप्त किया।

6. आलस्य को संकट और ऊर्जा के उपयोग को शांति मानकर
, ऊर्जा का सदुपयोग करना—यही
बुद्धों का उपदेश है।

7 विवाद को संकट और अहिंसा को
शांति मानकर, एकजुट और कोमल हृदय बनो—यह
बुद्धों की शिक्षा है।

8 लापरवाही को संकट और परिश्रम को शांति मानकर,
अष्टमार्ग का अनुसरण करो—यह
बुद्धों की शिक्षा है।
भगवान ने अपने पूर्व
आचरण का उदाहरण देते हुए धम्म पर प्रवचन दिया, जिसे
बुद्धों की वीर गाथाएँ कहा जाता है

। अंत में आचरण की टोकरी आती है।